हिन्दी कथा साहित्य में महिला कथाकारों द्वारा चित्रित महिलाधिकार

शिखा तिवारी

शोध छात्रा
हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

महिलाओं के अधिकारों में उनकी (स्त्रियों) की स्वतन्त्रता, समानता एवं अस्मिता (अस्तित्व) प्रमुख हैं। स्त्री के समानता के संघर्ष के प्रति दया या सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है अपितु यह स्वीकार करने की जरूरत है कि यह तो उसका अधिकार चिरकाल से है जो उसे स्वतः ही प्राप्त होने चाहिए, क्योंकि स्त्री तो सर्जक है, उत्पादक है, श्रमिक है, शक्ति है, वह उपभोक्ता नहीं है। स्त्री को सर्जक के बजाय जब हम उपभोक्ता बनाते है तो एक तरफ उसके लिए सामाजिक सीमा बनाते हैं और दूसरी तरफ उसके सारे अधिकार छीन लेते हैं। यद्यपि महिलाओं को कानूनी अधिकार प्रदान किये गये हैं परन्तु इनकी सार्थकता की दृष्टि से आज भी स्त्रियों की स्थिति सोचनीय है। इन प्राप्त अधिकारों के प्रति महिलाओं को शसक्त होने की आवश्यकता है–

1. सती प्रथा निरोधक अधिनियम–1829
2. हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम–1856
3. बाल विवाह निरोधक अधिनियम–1929
4. हिन्दू स्त्रियों का संपत्ति अधिकार अधिनियम –1937
5. हिन्दू विवाह और तलाक अधिनियम–1925
6. स्त्रियों और कन्याओं के अनैतिक व्यापार पर रोक अधिनियम–1956
7. दहेज निरोधक अधिनियम–1961

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के रूप में प्राप्त इन अधिकारों से भारतीय स्त्री को क्या समानता प्राप्त हुई है। इस सन्दर्भ में– संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित 'द ह्यूमन डेवेलपमेन्ट रिपोर्ट : दी प्रोग्रेस ऑफ दी वर्ल्ड्स वीमेन रिपोर्ट' में भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार बताया गया है। उसके पश्चात् 'दी यू0एन0 फण्ड फॉर डेवेलपमेन्ट ऑफ वुमेन' के स्कोरकार्ड में भारतीय प्रयासों की सराहना की गयी है जिसके अन्तर्गत भारतीय महिला के लिंग समानता के क्षेत्र में कार्य किया जाना बताया गया है लेकिन व्यावहारिक आकलन तो यही सिद्ध करता है कि अभी कुछ अधिक प्राप्त नहीं हुआ है।

आज भी 50% महिलाएँ ऐसी हैं जो स्वतन्त्रतापूर्वक कोई निर्णय नहीं ले सकती हैं। आर्थिक तौर से आत्मनिर्भर होने पर उनके सम्पत्ति का अधिकारपूर्वक उपभोग पुरुष करता है और स्त्री को अपने पहनावे एवं खुराक के लिए भी पुरुष की अनुमति लेनी पड़ती है।

हम नारी अस्मिता एवं अधिकारों को साहित्य के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं। साहित्य में स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा के लिए, स्वतन्त्रता के लिए अस्मिता के लिए जोर–शोर से आवाज उठायी गयी है जिसमें 'पुरुष' एवं 'महिला' लेखक एवं लेखिकाएँ सम्मिलित हैं। साहित्यकारों ने 'कथ्यगत' एवं 'शिल्पगत' रूढ़ियों को तोड़कर एक 'विश्लेषक' दृष्टि का परिचय दिया है। 'साहित्य' 'नारी चेतना' एवं 'नारी के अधिकारों' तक ही सीमित नहीं है अपितु 'हाशिए' पर फेंकी गई अस्मिता को सामने लाने का प्रयास करता है।

स्त्री की समानता के संघर्ष के प्रति दया या सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है अपितु यह स्वीकार करने की जरूरत है कि उसका अधिकार चिरकाल से है जो उसे स्वतः ही प्राप्त होने चाहिए, क्योंकि स्त्री तो सर्जक है, उत्पादक है, श्रमिक है, शक्ति है, वह उपभोक्ता नहीं है। आज भी 50% महिलाएँ ऐसी हैं जो स्वतन्त्रतापूर्वक कोई निर्णय नहीं ले सकती हैं। आर्थिक तौर से आत्मनिर्भर होने पर उनके सम्पत्ति का अधिकारपूर्वक उपभोग पुरुष करता है और स्त्री को अपने पहनावे एवं खुराक के लिए भी पुरुष की अनुमति लेनी पड़ती है।

भारतीय सन्दर्भ में बात करें तो स्त्री के अधिकारों पर पहली बार आवाज **'राजा राम मोहनराय'** ने 1924 ई0 में उठायी तथा **'सती प्रथा'** का विरोध किया। भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलन ने बाल विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा जैसे स्त्री जागरुकता के विषयों पर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। **1917 ई0 'इण्डियन वीमन्स एसोसिएशन', 1925 ई0 में 'अखिल भारतीय महिला परिषद' की स्थापना की गयी।**

''महादेवी वर्मा', 'सरोजनी नायडू', 'पण्डिता रमाबाई', 'ताराबाई शिंदे', 'ज्योतिबा फुले', 'राजेन्द्र यादव', 'मैत्रेयी पुष्पा', 'प्रभा खेतान' आदि ने इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। 'ताराबाई शिंदे' ने 'स्त्री पुरुषतुलना' **'तुम्हारे देवता दगाबाज दिखते हैं', 'स्त्रीगृहबन्दीशाला में गुलाम'** जैसे लेखों में स्त्री–समानता का तार्किक पक्ष रखा।

'स्त्री चेतना' को **'वर्जिनिया वुल्फ' तथा 'सिमोव द बोउआर' ने काफी प्रभावित किया।** 'प्रभा खेतान' **ने 'बोउआर'** की आत्मकथा **'सेकेण्ड सेक्स'** का हिन्दी अनुवा किया। **1915 ई0 में 'दुःखिनी बाला'** के नाम से एक स्त्री ने **'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी'** नामक आत्मकथा लिखी। उल्लेखनीय है कि तब लेखिका में इतना साहस भी नहीं था कि वह अपना नाम प्रकाशित कर सके किन्तु वर्तमान स्थिति बदल चुकी है आज अनेक लेखिकाएँ आत्मकथा आदि अनेक विधाओं में पूरे साहस के साथ लिख भी रही हैं और प्रकाशित भी करा रही हैं।

'मैत्रेयी पुष्पा' अपनी रचनाओं में स्त्री के अधिकारों एवं अस्तित्व को स्पष्ट करती हैं। अपनी कहानियों में 'विवाह' और 'परिवार' द्वारा पीड़ित नारी का यथार्थ चित्रण करती है। **'मुस्कुराती औरतें'** की 'फूलकली मैडम' आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने पर भी पति के दुर्व्यवहार से त्रस्त है–**''शादी की रातें पत्थर पर खुदी लकीरों की तरह होती हैं। उन लकीरों को कौन मिटा सकता है जबकि अपना भविष्य ही अस्तित्व ही पत्थर हो गया हो।''**[1] विवाह की अहम् समस्या दहेज है जिसे सामाजिक अभिशाप माना जा सकता है। दहेज रूपी राक्षस ने भयभीत कर दिया है कि बेटी होना ही पाप है। 'साँप–सीढ़ी' नामक कहानी में मैत्रेयी जी,

इसका यथार्थ एवं विद्रूप चेहरा सामने लाती है–लड़के के पिता का असली चेहरा उस समय सामने आता है जब वह कहता है –**''एक लाख के बिना भाँवर नहीं पड़ेगी और पचार हजार के बिना विदा नहीं होगी।''**[2]परन्तु इन विरोधी परिस्थितियों में भी 'मैत्रेयी' की नारी संघर्ष के साथ आगे बढ़ती है। **'बारहवीं रात'** कहानी में धमना वालों की बेटी इसलिए विवाह करने से मना कर देती है, क्योंकि वह अपनी पूर्व पत्नी की हत्या का आरोपी है।

नारी और पुरुष समाज में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। परन्तु दोनों के लिए मान्यताओं के पालन करने के मापदंड भिन्न–भिन्न हैं। नारी के अन्दर पुरुष की अपेक्षा अधिक आत्मिक बल है, शक्ति है परन्तु यदि दुर्बल है तो शारीरिक दृष्टि से जिसे रौंदकर पुरुष अपना पुरुषार्थ प्रकट करता है। 'मैत्रेयी ने अपनी कहानियों में समाज के दकियानूसी मान्यताओं का विरोध किया है। स्त्रियों को उनके कार्य करने की स्वतन्त्रता का अधिकार 'रिजक' कहानी में स्पष्ट होता है। जिसमें 'बसोर' जाति की स्त्रियों का कार्य बच्चे जनवाने का था समय परिवर्तन के साथ यह परम्परा भंग हो जाती है 'लल्लन' नामक स्त्री जो प्रसूति कार्य करती थी। उसने कदम बढ़ाया। उसका कार्य क्षेत्र परिवर्तित हुआ –**''लल्लन मेम बनकर आई है....जिस तरह आई उसी तरह रही। उसी पोशाक में, उसी अदा में, उसी इल्म के साथ..... ।''**[3]

नारी के सकारात्मक छवि का अंकन करते हुए ऐसी 'माँ' का भी चित्रण करती हैं जो अपनी बेटियों को किसी प्रकार का अन्याय सहन न करने के लिए प्रेरित करती है। चाहे वे 'कैरियर' से सम्बन्धित हो या 'विवाह' से। 'मैंने महाभारत देखा है', की 'ब्रजेश', 'आवारा न बन' की 'नीलू' ऐसी ही बेटियाँ हैं जो अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए अलग व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। 'शतरंज के खिलाड़ी' नामक कहानी में पति के विरूद्ध पत्नी द्वारा राजनीतिक मोर्चा खोलते हुए दिखाया गया है, जिसमें वह अपने 'अस्तित्व' को एक नाम देती है। 'पीतम सिंह' जब यह जताता है कि उसकी हैसियत से ही पत्नी 'सुशीला' को वोट मिलेंगे तब 'सुशीला' अपना पक्ष रखती है–**''हम पति–पत्नी के रिश्ते में बंधे हैं, ठीक है पर लोगों की नजरों में तो हमारे अलग–अलग वजूद हैं। हम अलग स्वभाव, अलग तासीर के दो अलग–अलग प्राणी हैं।''**[4]

'मैत्रेयी पुष्पा' ने विवाह की अनेक नकारात्मक तथ्यों को उजागर अवश्य किया है परन्तु विवाह को नकारती नहीं हैं अपितु विवाहित होकर भी स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है। जिससे उनको (स्त्री) को एक नया स्वरूप एवं अस्तित्व प्राप्त हो सके।

स्त्री आन्दोलन की पृष्ठभूमि स्त्री और पुरुष दोनों ने तैयार किया है। स्त्रियों के लिए औजार बने व्यक्तिगत अनुभव और बौद्धिकता। नारीवादी लेखिका – 'प्रभा खेतान' कहती हैं –**''हम स्त्रियों के पास इसके सिवा चारा ही क्या है। हम अपने आपको उघाड़ कर ही यथास्थितिवाद के खिलाफ विद्रोह कर पाती है। हमारा अन्तरंग अनुभव ही हमारा पहला अस्त्र है। वही हमारी बौद्धिकता का प्रस्थान बिन्दु है। उसकी प्रमाणिकता ही उसे आगे चलकर इतिहास बनाती है।''**[5]

'प्रभा खेतान – 'उपनिवेश में स्त्री' नामक रचना में लिखती हैं –**''स्त्री–मुक्ति आन्दोलन अपनी व्यापकता में अन्य आन्दोलनों को समाहित तो नहीं करती, पर उनके तंत्र को छेड़ती अवश्य है। प्रत्येक आन्दोलन का अपना राजनीतिक आधार होता है। मुक्ति का सन्दर्भ यदि समाज है तो स्वाभाविक है, मानव–मुक्ति ही प्राथमिकता में होगा। नारीवाद मार्क्सवाद अलग होते हुए भी मार्क्सवाद के काफी करीब है। दोनों का केन्द्रीय मुद्दा श्रम है, दोनों यह स्वीकार करते हैं कि पूँजीवाद ने स्त्री तथा श्रम का शोषण किया है।''**[6]

उपर्युक्त विवेचनाओं के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री मुक्ति आन्दोलन एक सामाजिक आन्दोलन है जिसकी व्यापकता में समाज के सभी संस्थानों को पुनर्परिभाषित एवं पुनर्मूल्यांकित किया जाता है, जो पुरुष प्रधान संस्थानों की विशद आलोचना करते हुए उसमें स्त्री की जगह सुनिश्चित करना चाहता है। अन्ततः स्त्रीवादी आंदोलन अपने अधिकारों के लिए न्याय का पक्ष रखता है। इसलिए स्त्री–चिन्तन मानवाधिकार का प्रश्न भी है। इससे स्त्री–जीवन में नई सम्भावनाओं के द्वार खुले, स्त्री का व्यक्तित्वान्तरण हुआ। वह दबी, सहमी, सकुचाई स्त्री की स्थिति से उभरकर स्वाभिमानी, स्वावलम्बी और समाजिक–राजनीतिक रूप से भी सक्षम हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. डॉ0 शगुफ्ता नियाज़, अनुसंधान (त्रैमासिक शोध पत्रिका) अंक–जनवरी–जून 2017, पृ0सं0–7
2. वही, पृ0सं0–7
3. वही, पृ0सं0–8
4. वही, पृ0सं0–10
5. डॉ0 सुनील जोशी एवं रविनन्दन सिंह, हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक), अंक जुलाई–सितम्बर, 2016, पृ0 सं0–67
6. वही, पृ0सं0–69